

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 11 अध्याय 17: वर्णाश्रम-व्यवस्था

5 October 2026



उद्धव भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि कर्तव्य का यह पावन मार्ग पृथ्वी से लुप्त न हो, और श्रीकृष्ण आनन्दपूर्वक उत्तर देते हैं — चार वर्णों तथा चार आश्रमों को अपने ही विराट रूप से उत्पन्न बताते हुए, और दिखाते हैं कि इनमें से प्रत्येक, भक्तिपूर्वक जीया जाए तो, उन्हीं तक पहुँचाने वाला मार्ग बन जाता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है, जो श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं तथा शिक्षाओं के माध्यम से एक भक्तिपूर्ण यात्रा है। उद्धव एक कोमल किन्तु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय की ओर मुड़ते हैं: वे पावन कर्तव्य जिनके द्वारा जीवन की हर अवस्था में स्थित आत्मा भक्ति की ओर अग्रसर हो सकती है। भगवान् कृष्ण प्रसन्नतापूर्वक उत्तर देते हैं, यह प्रकट करते हुए कि साधारण-सा दैनिक कर्तव्य भी, सच्चे भाव से समर्पित होने पर, पूजा बन जाता है।

अध्याय की जानकारी

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण

- स्कन्ध: 11 (एकादश स्कन्ध)
- अध्याय: 17 (सप्तदश प्रवचन)
- अध्याय शीर्षक: भगवान् कृष्ण द्वारा वर्णाश्रम-व्यवस्था का वर्णन
- प्रधान वक्ता: श्रीकृष्ण, उद्धव को उपदेश देते हुए; समस्त सुकदेव गोस्वामी द्वारा राजा परीक्षित को कहा गया
- प्रधान श्रोता: उद्धव; तथा राजा परीक्षित
- मुख्य स्थान: द्वारका
- केन्द्रीय विषय: चार वर्णों तथा चार आश्रमों का पावन मूल एवं उनके कर्तव्य, तथा अपने नियत कर्तव्य के पालन से भक्ति किस प्रकार जागृत होती है
- प्रधान श्लोक-सीमा: स्कन्ध 11, अध्याय 17, श्लोक 1-58
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय का सन्दर्भ

अध्याय 16 में भगवान् ने उद्धव को अपनी दिव्य विभूतियाँ दिखाई और वाणी, मन, प्राण तथा इन्द्रियों को वश में करने तथा दृष्टि केवल अपने पर स्थिर करने का आदेश दिया। अब वे उद्धव के उस चिरसंचित प्रश्न की ओर मुड़ते हैं जो स्वधर्म तथा भक्ति के सम्बन्ध को छूता है।

उद्धव की एक लुप्त होते मार्ग के लिए प्रार्थना

उद्धव ने निवेदन किया कि भक्ति को प्रकट करने वाला वह पावन मार्ग — चार वर्णों तथा आश्रमों के नियमों का पालन करने वालों के लिए — भगवान् द्वारा बहुत पहले, दिव्य हंस के रूप में, स्वयं ब्रह्मा को सिखाया गया था।

श्रीउद्धव उवाच

यस्त्वयाभिहितः पूर्व धर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः ।

वर्णाश्रमाचारवतां सर्वेषां द्विपदामपि ॥ १ ॥

यथानुष्ठीयमानेन त्वयि भक्तिर्नृणां भवेत् ।

स्वधर्मेणारविन्दाक्ष तन् ममाख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥

*śrī-uddhava uvāca yas tvayābhihitaḥ pūrvam dharmas tvad-bhakti-lakṣaṇaḥ
varṇāśramācāravatāṁ sarveṣāṁ dvi-padām api yathānuṣṭhīyamānena tvayi bhaktir nṛṇāṁ
bhavet sva-dharmeṇāravindākṣa tan mamākhyātum arhasi*

अर्थ: उद्धव ने निवेदन किया: हे कमल-नयन प्रभु, कृपया वह पावन मार्ग, जो आपने पहले चार वर्णों तथा आश्रमों के पालकों के लिए बताया था, अब मुझे पूर्णतः समझाइए — कि अपने ही कर्तव्य के द्वारा मनुष्य में भक्ति कैसे जागृत होती है। (स्कन्ध 11, अध्याय 17, श्लोक 1-2)

वह मार्ग, उन्होंने स्मरण किया, पृथ्वी से बहुत पहले लुप्त हो चुका था; और जब भगवान् स्वयं इस लोक से विदा हो जाएँगे, तब उसे कौन सिखाएगा या रक्षा करेगा? उद्धव ने प्रार्थना की कि भगवान् स्वयं बताएँ कि यह भक्ति-जनक धर्म किस पर और किस प्रकार विहित हुआ है।

हंस-युग

प्रसन्न होकर, सुकदेव गोस्वामी ने कथा सुनाई, श्रीहरि ने वर्णों तथा आश्रमों के सनातन कर्तव्यों की शिक्षा देनी आरम्भ की — यह प्रश्न, उन्होंने कहा, पूर्णतः धर्ममय है, क्योंकि यह परम कल्याण की ओर ले जाता है।

प्रथम सत्ययुग में, मनुष्य का केवल एक वर्ण था जिसे हंस कहा जाता था, क्योंकि उस युग में जन्म लेते ही लोगों का जीवन-प्रयोजन सिद्ध हो जाता था — इसीलिए उसे कृतयुग कहा गया।

आदौ कृतयुगे वर्णो नृणां हंस इति स्मृतः ।

कृतकृत्याः प्रजा जात्या तस्मात् कृतयुगं विदुः ॥ १० ॥

ādaу kṛta-yuge varṇo nṛṇāṃ haṁsa iti smṛtaḥ kṛta-kṛtyāḥ prajā jātyā tasmāt kṛta-yugaṃ viduḥ

अर्थ: प्रथम सत्ययुग में, मनुष्य का एक ही वर्ण था जिसे हंस कहा गया; वे लोग अपने जन्म से ही जीवन-प्रयोजन सिद्ध कर चुके थे — इसीलिए उस युग को कृतयुग कहा जाता है। (स्कन्ध 11, अध्याय 17, श्लोक 10)

उस आदिकाल में वेद केवल रहस्यमय अक्षर ॐ के रूप में था, और भगवान् स्वयं चतुष्पाद वृषभ के रूप में धर्म थे; वे सरल, तपस्वी लोग उन्हीं निर्मल हंस की उपासना करते थे। त्रेतायुग के आरम्भ में, त्रयी वेद — ऋक्, साम तथा यजुः — उनके ही हृदय से प्रकट हुए, और उससे यज्ञ स्वयं प्रकट हुआ।



प्रथम सत्ययुग में मनुष्य का केवल एक वर्ण था, हंस, जो भगवान् की चतुष्पाद धर्म-वृषभ के रूप में उपासना करते थे (श्लोक 10-11)।

विराट पुरुष से उत्पन्न

ब्रह्मा से, जो स्वयं विराट पुरुष से उत्पन्न हुए थे, चार वर्ण उत्पन्न हुए — ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र — क्रमशः मुख, बाहु, जंघा तथा चरणों से, जो आगे अपने-अपने स्वभाव तथा आचार से पहचाने गए।

विप्रक्षत्रियविट्शूद्रा मुखबाहूरुपादजाः ।

वैराजात् पुरुषाज्जाता य आत्माचारलक्षणाः ॥ १३ ॥

vipra-kṣatriya-viṭ-śūdrā mukha-bāhūru-pāda-jāḥ vairājāt puruṣāj jātā ya ātmācāra-lakṣaṇāḥ

अर्थ: ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र विराट पुरुष के मुख, बाहु, जंघा तथा चरणों से उत्पन्न हुए, और प्रत्येक अपने सहज स्वभाव तथा आचार से पहचाना जाता है। (स्कन्ध 11, अध्याय 17, श्लोक 13-15)

इसी प्रकार चार आश्रम भी उनके ही रूप से उत्पन्न हुए — गृहस्थ उनकी कटि से, ब्रह्मचारी उनके हृदय से, वनवासी उनके वक्षस्थल से, संन्यासी उनके मस्तक से। प्रत्येक वर्ग का स्वभाव, उनके उद्गम-स्थान के अनुरूप था — किन्तु, जैसा वे आगे प्रकट करने वाले थे, यह कोई श्रेष्ठता की सीढ़ी नहीं, क्योंकि इन भिन्न स्वभावों के नीचे एक ही धर्म सभी में समान रूप से विद्यमान है।

प्रत्येक वर्ण के लिए एक ही धर्म

शान्त एवं संयत मन, तप, पवित्रता तथा सन्तोष, भगवान् के प्रति समर्पित सत्यनिष्ठ हृदय — यही ब्राह्मण का स्वभाव है।

शमो दमस्तपः शौचं सन्तोषः क्षान्तिरार्जवम् ।

मद्भक्तित्वं दया सत्यं ब्रह्मप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १६ ॥

śamo damas tapaḥ śaucaṁ santoṣaḥ kṣāntir ārjavam mad-bhaktiś ca dayā satyaṁ brahma-prakṛtayas tv imāḥ

अर्थ: मन का संयम, इन्द्रियों का संयम, तप, पवित्रता, सन्तोष, क्षमा, सरलता, मेरे प्रति भक्ति, दया तथा सत्य — ये ब्राह्मण के सहज गुण हैं। (स्कन्ध 11, अध्याय 17, श्लोक 16)

तेज तथा शौर्य क्षत्रिय के लक्षण हैं; श्रद्धा तथा उदारता वैश्य के; ब्राह्मण, गौ तथा देवताओं की निष्कपट सेवा शूद्र के। इस चतुर्वर्ण से बाहर के लोग इसके विपरीत पाए जाते हैं। तथापि एक ही धर्म सभी वर्णों को अपवाद-रहित बाँधता है:

अहिंसा सत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता ।

भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः ॥ २१ ॥

ahimsā satyam asteyam akāma-krodha-lobhatā bhūta-priya-hitehā ca dharmo 'yam sārva-varṇikah

अर्थ: अहिंसा, सत्य, चोरी से विरति, काम-क्रोध-लोभ से मुक्ति, तथा समस्त प्राणियों के हित तथा प्रिय की चेष्टा — यही वह एक पावन धर्म है जो समान रूप से सभी वर्णों में साझा है। (स्कन्ध 11, अध्याय 17, श्लोक 21)

इस समापन-श्लोक से भगवान् का अभिप्राय स्पष्ट हो जाता है: वर्णित भिन्न स्वभाव कोई सीढ़ी नहीं, अपितु सेवा की विविधता है, और इन सबके नीचे प्रत्येक आत्मा से वही कोमल, सत्यनिष्ठ हृदय अपेक्षित है।

गुरुकुल में ब्रह्मचारी के वर्ष

यज्ञोपवीत संस्कार के पश्चात्, शिष्य अपने गुरु के घर में, इन्द्रियों को संयत रखते हुए, वेदों का पाठ करते तथा उनके अर्थ का चिन्तन करते हुए निवास करता था। वह मूँज की मेखला, रुद्राक्ष-माला तथा यज्ञोपवीत धारण करता था, स्नान या हवन के समय मौन रहता था, और कठोर ब्रह्मचर्य का पालन करता था, प्रतिदिन प्रातः-सायं अग्नि, सूर्य, आचार्य, गौ तथा ब्राह्मणों की पूजा करते हुए।



ब्रह्मचारी अपने गुरु के घर में अनुशासित जीवन जीता है, प्रातः-सायं पावन अग्नि की सेवा करते तथा वेदों का पाठ करते हुए (श्लोक 22-26)।

सबसे बढ़कर, शिष्य को अपने आचार्य को साक्षात् भगवान् ही समझना चाहिए, और उन्हें कभी भी साधारण मनुष्य समझकर उनका अनादर नहीं करना चाहिए, क्योंकि गुरु में समस्त देवताओं का निवास है।

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् ।

न मर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः ॥ २७ ॥

ācāryam mām vijānīyān navamanyeta karhicit na martya-buddhyāsūyeta sarva-deva-mayo guruḥ

अर्थ: शिष्य आचार्य को मुझे ही जाने, और उनका अनादर कभी भी साधारण मनुष्य समझकर न करे — क्योंकि गुरु समस्त देवताओं के स्वरूप हैं। (स्कन्ध 11, अध्याय 17, श्लोक 27)

प्रातः-सायं भिक्षा लाकर, वह सब कुछ अपने गुरु को अर्पित करता था, और उनकी अनुमति के बिना कुछ भी ग्रहण नहीं करता था; तथा विद्या पूर्ण होने तक वह अपने गुरु की सेवा विनीत भाव से, एक सेवक के समान, करता रहता था।

सर्वत्र एक ही भगवान् को देखना

जो शिष्य इस जीवन के पश्चात् ब्रह्मलोक को प्राप्त करना चाहता था, उसे अपने शरीर को आगे के अध्ययन हेतु गुरु को समर्पित करना चाहिए, जीवनपर्यन्त ब्रह्मचर्य का व्रत धारण करते हुए। वैदिक तेज से दीप्तिमान तथा पापरहित, ऐसा ब्रह्मचारी कहीं भी भेद न देखते हुए, अग्नि, गुरु, अपनी आत्मा तथा समस्त प्राणियों में समान रूप से परमात्मा की उपासना करता था।

अग्नौ गुरावात्मनि च सर्वभूतेषु मां परम् ।

अपृथग्धीरुपासीत ब्रह्मवर्चस्व्यकल्मषः ॥ ३२ ॥

agnau gurāv ātmani ca sarva-bhūteṣu mām param apṛthag-dhīr upasīta brahma-varcasvy akalmaṣaḥ

अर्थ: वैदिक तेज से दीप्तिमान तथा पापरहित होकर, ब्रह्मचारी भेद-बुद्धि से रहित होकर मुझ परमात्मा की उपासना करे — अग्नि में, गुरु में, अपनी आत्मा में तथा समस्त प्राणियों में। (स्कन्ध 11, अध्याय 17, श्लोक 32)

जो गृहस्थ नहीं थे, वे स्त्रियों के दर्शन तथा संग से विरत रहते थे; तथा पवित्रता, सन्ध्या-वन्दन, सरलता एवं समस्त प्राणियों में भगवान् को देखने का यह नियम तीनों आश्रमों के लिए समान था। जो ब्रह्मचारी वेदों में निष्णात होकर तप से अपने कर्म-बीजों को भस्म कर देता था, वह अग्नि के समान तेजस्वी हो जाता था, और भगवान् के भक्त रूप में उन्हीं को प्राप्त होता था।

गृहस्थ जीवन में प्रवेश

जब शिष्य वेदों का अर्थ भली-भाँति समझ लेता था, वह अपने गुरु को दक्षिणा अर्पित करके समावर्तन संस्कार से गुजरता था — वह पावन स्नान जो गुरुकुल से घर लौटने का प्रतीक है। उसके पश्चात् वह गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर सकता था, वन में जा सकता था, या संन्यास ग्रहण कर सकता था — आश्रमों का क्रम से पालन करते हुए, किसी ऊँचे आश्रम से नीचे न लौटते हुए। यदि वह विवाह करना चाहे, तो अपने ही वर्ण की, निर्दोष तथा अपने से छोटी कन्या से विवाह करे।



वेदों का अर्थ भली-भाँति जानकर, शिष्य गुरु को दक्षिणा अर्पित करता है और समावर्तन संस्कार से जीवन की अगली अवस्था में प्रवेश करता है (श्लोक 37-38)।

ब्राह्मण की वृत्ति, और भगवान् की प्रतिज्ञा

यज्ञ, वेदाध्ययन तथा दान समस्त द्विजों के कर्तव्य हैं; परन्तु दान ग्रहण करना, वेद पढ़ाना तथा यज्ञ में पुरोहिती करना केवल ब्राह्मण का ही अधिकार है। क्योंकि दान उसकी तपस्या को क्षीण कर सकता है, ब्राह्मण के लिए शेष दो वृत्तियों से जीवन-यापन करना, या खेतों में बिखरे अन्न को बीनकर जीना श्रेष्ठ है — यह शरीर भोग के लिए नहीं, सत्य की खोज तथा कष्ट सहने के लिए दिया गया है। थोड़े में सन्तुष्ट तथा भगवान् को समर्पित आत्मा वाला ऐसा ब्राह्मण परम शान्ति को प्राप्त होता है। इस पर भगवान् ने अपनी करुणामयी प्रतिज्ञा जोड़ी:

समुद्धरन्ति ये विप्रं सीदन्तं मत्परायणम् ।

तानुद्धरिष्ये नचिरादापद्भ्यो नौरिवार्षवात् ॥ ४४ ॥

*samuddharanti ye vipraṁ sīdantaṁ mat-parāyaṇam tān uddharisye na cirād āpadbhyo naur
ivārṇavāt*

अर्थ: जो लोग मेरे भक्त, विपत्तिग्रस्त ब्राह्मण का उद्धार करते हैं — उनका मैं स्वयं विपत्तियों से शीघ्र उद्धार करता हूँ, जैसे नाव समुद्र में डूबते हुए को बचाती है। (स्कन्ध 11, अध्याय 17, श्लोक 44)

विपत्ति काल के कर्तव्य

एक विवेकी राजा, पिता के समान, अपनी प्रजा को विपत्ति से बचाए। विपत्तिग्रस्त ब्राह्मण व्यापार या अन्तिम उपाय के रूप में शस्त्र का सहारा ले सकता है — परन्तु अपने से निम्न की सेवा कभी नहीं; क्षत्रिय व्यापार या आखेट से जीवन-यापन कर सकता है; वैश्य शूद्र की वृत्ति तथा शूद्र शिल्पकार का कार्य कर सकता है — किन्तु विपत्ति टल जाने पर किसी को भी निम्न वृत्ति से चिपका नहीं रहना चाहिए।

गृहस्थ का नित्य पूजन

गृहस्थ को अपनी सामर्थ्य के अनुसार प्रतिदिन देवताओं, ऋषियों, पितरों तथा समस्त प्राणियों को भगवान् के ही रूप मानकर पूजना चाहिए — अग्नि में हवन, वेद-पाठ, पितरों के लिए श्राद्ध तथा तर्पण, छोटे प्राणियों के लिए बलि, तथा आगन्तुकों के लिए आतिथ्य द्वारा — केवल न्यायपूर्वक अर्जित धन से, आश्रितों को कष्ट पहुँचाए बिना।



गृहस्थ अग्नि में हवन के द्वारा देवताओं, ऋषियों तथा पितरों की पूजा करता है और प्रत्येक आगन्तुक अतिथि का स्नेहपूर्वक आतिथ्य करता है (श्लोक 50-51)।

आसक्ति का संकट, अनासक्त की मुक्ति

गृहस्थ को भी अपने परिवार में बँधना या अपने वास्तविक लक्ष्य को भूलना नहीं चाहिए। पुत्र, पत्नी तथा सम्बन्धियों का मिलन, भगवान् ने कहा, मार्ग में यात्रियों के मिलने के समान है — शरीर बदलते ही वे स्वप्न के दृश्यों के समान लुप्त हो जाते हैं। अपने घर में अतिथि के समान रहते हुए, “मैं” तथा “मेरा” के भाव से मुक्त, गृहस्थ भीतर से स्वतन्त्र रहता है, और गृहस्थ ही बना रह सकता है, वन में जा सकता है, या पुत्र होने पर संन्यास ग्रहण कर सकता है।

परन्तु जिसका मन घर तथा धन में आसक्त है, जो अपनी पत्नी से शासित तथा “मैं” एवं “मेरा” से मोहित है, वह सचमुच बँध जाता है, उसके विचार निरन्तर यही दौड़ते हैं: “हाय, मेरे वृद्ध माता-पिता, मेरी पत्नी तथा बालक — मेरे बिना वे कैसे जीवित रहेंगे?”

एवं गृहाशयाक्षिप्तहृदयो मूढधीरयम् ।

अतृप्तस्ताननुध्यायन् मृतोऽन्धं विशते तमः ॥ ५८ ॥

evam grhāśayākṣipta- hṛdayo mūḍha-dhīr ayam atṛptaś tām anudhyāyan mṛto 'ndham viśate tamaḥ

अर्थ: इस प्रकार अपने परिवार की आसक्ति से बँधे हृदय वाला यह मूढ़ मनुष्य, असन्तुष्ट ही, अपने परिजनों का चिन्तन करते हुए मरता है, और अन्धकार में प्रवेश करता है। (स्कन्ध 11, अध्याय 17, श्लोक 58)



अपने घर में अतिथि के समान रहते हुए, "मैं" तथा "मेरा" से मुक्त, गृहस्थ परिवार के बन्धनों के बीच भी भीतर से स्वतन्त्र रहता है (श्लोक 52-58)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. अपने ही कर्तव्य से भक्ति पकती है। चार वर्णों तथा आश्रमों का धर्म वह साधन है जिससे हृदय में भक्ति जागृत होती है (श्लोक 1-2, 9-10)।
2. प्रत्येक वर्ण तथा आश्रम भगवान् से ही उत्पन्न है। समाज के वर्ग तथा जीवन की अवस्थाएँ भगवान् के ही विराट रूप से उत्पन्न होती हैं, प्रत्येक एक ही सम्पूर्णता का पावन अंश, श्रेष्ठता की सीढ़ी नहीं (श्लोक 13-15)।
3. स्वभाव ईश्वर-प्रदत्त है, किन्तु एक ही धर्म सभी को जोड़ता है। भगवान् प्रत्येक वर्ण के गुण बताते हैं, फिर घोषित करते हैं कि अहिंसा, सत्य तथा दया प्रत्येक आत्मा से समान रूप से अपेक्षित है (श्लोक 16-21)।
4. गुरु को साक्षात् भगवान् मानकर सम्मान दें। जो शिष्य बिना अनादर के अपने गुरु की सेवा करता है, वह वास्तव में उनके भीतर विराजमान भगवान् की ही पूजा करता है (श्लोक 27)।
5. सर्वत्र एक ही भगवान् को देखें। अग्नि, गुरु, आत्मा तथा समस्त प्राणियों में समान रूप से उनकी उपासना परमात्मा के लिए तत्परता का चिह्न है (श्लोक 32)।
6. भगवान् अपने भक्त की रक्षा करने वाले की भी शीघ्र रक्षा करते हैं। जो किसी भगवद्भक्त, विपत्तिग्रस्त आत्मा का उद्धार करता है, उसे भी प्रत्युत्तर में उद्धार का वचन मिलता है (श्लोक 44)।
7. "मैं" और "मेरा" का मोह ही वास्तविक बन्धन है। जो परिवार को स्थायी मानकर बँधता है, वह बन्धन में है; जो उनके बीच कृतज्ञ अतिथि के समान, भगवान् को समर्पित होकर रहता है, वह घर में रहकर भी मुक्त रहता है (श्लोक 58)।

एक भाक्तेपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय में जो हृदय को सबसे अधिक स्पर्श करता है, वह कर्तव्यों की विविधता नहीं, अपितु उनके नीचे छिपी कोमलता है। भगवान् कोई ऐसी सीढ़ी नहीं देते जिस पर आत्माएँ एक-दूसरे को पीछे छोड़ें; वे एक ही धर्म — कोमलता तथा सत्य का — देते हैं, और केवल यही चाहते हैं कि प्रत्येक आत्मा जहाँ भी खड़ी हो, वहीं से उस धर्म की ओर बढ़े — अग्नि-वेदी हो, सिंहासन हो, या वह अल्प सेवा जो किसी निर्धन के पास ही है। ब्रह्मचारी के दीर्घ तप भी, मूलतः, सही दृष्टि का अभ्यास है: कि उसका गुरु तथा उसके समक्ष आने वाला प्रत्येक प्राणी एक ही भगवान् के अनेक रूप हैं। और जब भगवान् परिवार की चिन्ता से व्याकुल गृहस्थ की ओर मुड़ते हैं, वे उस प्रेम को तुच्छ नहीं मानते; वे केवल यह चाहते हैं कि उसे एक प्रिय अतिथि के समान धारण किया जाए — स्नेहपूर्वक, किन्तु जकड़े बिना।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, जो भी कर्तव्य पहले से आपका है — आपका कार्य, या अपने परिवार या वरिष्ठों की सेवा — उसे आरम्भ करने से पहले एक क्षण रुककर मन में ही भगवान् को अर्पित करें। यदि आपके जीवन में कोई गुरु या वरिष्ठ हैं, तो उन्हें, एक क्षण के लिए भी, भगवान् के ही प्रतिनिधि के रूप में देखने का अभ्यास करें। दिन के अन्त में, अपने प्रियजनों को उस यात्री की भाँति देखें जो मार्ग में मिले प्रिय साथियों को देखता है — अमूल्य, परन्तु अपने अधिकार की वस्तु नहीं — और धीरे से जपें: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।”

उपसंहार

यह सप्तदश प्रवचन उद्धव की उस प्रार्थना का उत्तर है कि कर्तव्य का पावन मार्ग पृथ्वी से कभी लुप्त न हो। श्रीकृष्ण इसे उसके मूल तक ले जाते हैं — प्रथम सत्ययुग का एक हंस-वर्ण, और फिर अपने ही विराट रूप से उत्पन्न चार वर्ण तथा चार आश्रम, प्रत्येक अपने स्वभाव से युक्त किन्तु अहिंसा, सत्य तथा दया के एक ही धर्म से बँधे। वे ब्रह्मचारी के गुरुकुल-जीवन का वर्णन करते हैं, जहाँ गुरु को साक्षात् भगवान् मानना है, गृहस्थ के नित्य पूजन तथा परिवार को बिना बन्धन में फँसे पालने के कर्तव्य का, तथा अपनी प्रतिज्ञा का कि जो किसी विपत्तिग्रस्त भक्त का उद्धार करे, उसका भी वे शीघ्र उद्धार करेंगे। अध्याय एक कोमल चेतावनी के साथ समाप्त होता है: घर तथा परिजनों से आसक्त हृदय अन्धकार की ओर जाता है, जबकि उसी परिवार को प्रिय अतिथि के समान, भगवान् को समर्पित धारण करने वाला हृदय मुक्ति की ओर। प्रत्येक वर्ण तथा प्रत्येक आश्रम, सच्चाई से जीया जाए, तो भगवान् द्वारा स्वयं अपने चरणों तक खोला गया मार्ग है।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य वाणी हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), एकादश स्कन्ध, सप्तदश प्रवचन, पृष्ठ 589–594।
- श्रृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़्डम • बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक से किसी सम्बन्ध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-skandh-11-adhyay-17-varnashram-vyavastha-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

